REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 11 | ISSUE - 11 | AUGUST - 2022

मध्यकालीन समाज सुधारक संत कबीर का ऐतिहासिक अध्ययन

स्वाति प्रीती
शोधार्थी इतिहास, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सारांश –

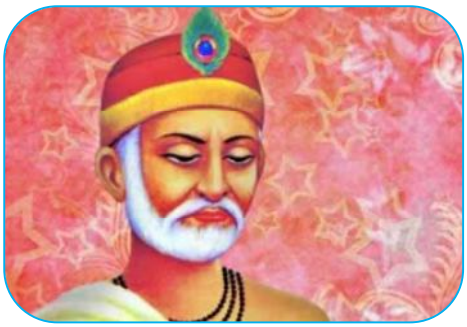

मध्यकाल से सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में व्याप्त विकृतियों के परिणामस्वरूप जो प्रमुख सुधार आंदोलन हुआ, उसे भक्ति आंदोलन के नाम से जाना जाता है। इस आंदोलन के संत नायक समाज एवं धर्म में सुधार के पक्षपाती थे। इस सुधारवादी भक्ति आंदोलन के प्रादुर्भाव एवं विद्वानों में काफी मतभेद है। ताराचंद, कुरेशी व खलीक अहमद निजामी के विचार है कि यह भक्ति आंदोलन, इस्लाम धर्म के सम्पर्क में आने के कारण उदित हुआ था। पर उल्लेखनीय है कि भक्ति–भावना के बीज भारतीय संस्कृति में प्राचीनकाल से ही पड़ गये थे। वास्तव में यह उस प्राचीन बीज का ही प्रतिफल प्रतीत होता है, न कि कोई विदेशी प्रभाव, फिर भी इस्लाम के कुछ तात्कालिक प्रभाव को भी नकारा नहीं जा सकता, जो स्वाभाविक ही था।

मुख्य शब्द – मध्यकाल, सुधार आंदोलन एवं संत कबीर।

प्रस्तावना –

'निर्भयज्ञान' तथा अनन्तदासकृत 'परचई' में कबीर के जीवन से सम्बद्ध अनेक घटनाओं के वर्णन मिलते हैं, किंतु उनमें ऐतिहासिकता का प्रायः अभ्युदय है तथा अतिरंजना और चमत्कार को अधिक महत्व दिया गया है। उदाहरण के लिए जगन्नाथपुरी के पंडे का जलता हुआ पैर काशी में जल गिराकर शीतल कर देना, हनुमान, वशिष्ठ आदि पौराणिक व्यक्तियों को शास्त्रार्थो में पराजित करना, गोरखनाथ (10वीं श.), मखदूम जहानियाँ उपमान जहाँगश्त (मृ.सं. 1444 वि.) आदि पूर्ववर्ती ऐतिहासिक व्यक्तियों से शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित करना। इस प्रकार सिकन्दर लोदी सम्बन्धी कई घटनाओं का उल्लेख मिलता है, जिनकी पुष्टि में अन्तः साक्ष्य मौन है। किंतु उनके जीवन की तीन प्रमुख घटनाएँ – पानी में डुबाये जाने, जलती आग में फेंके जाने तथा मदमत्त हाथी द्वारा कुचलवाये जाने की–ऐसी हैं जिनका उल्लेख भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास तथा दादू के शिष्य रज्जब जी ने भी किया है और इन तीनों घटनाओं का उल्लेख कबीर की प्रामणिक रचनाओं में मिलता है। उदाहरणतया कबीर–ग्रंथावली, प्रयाग विश्वविद्यालय संस्करण, पद संख्या 21, 23, 24। इससे ज्ञात होता है कि कबीर को कम से कम इन तीन यातनाओं का सामना अवश्य करना पड़ा था।

कबीर के जन्म के सम्बन्ध में काफी समय से यह कहानी प्रसिद्ध है। लगभग पौने छह सौ वर्ष पूर्व किसी जलाशय के पास नीरू जुलाहा और उसकी पत्नी नीमा को एक नवजात शिशु प्राप्त हुआ। नीमा का गौना उसी दिन हुआ था, अतः शिशु को साथ ले जाने में लोकलाज का भय था। थोड़े वाद–विवाद के पश्चात् पति–पत्नी दोनों उसे अपने घर ले जाकर पालन–पोषण के लिए सहमत हो गये। नीरूतल्ला (काशी में कबीरचौरा के सन्निकट) पहुंचने पर कुल परम्परा के अनुसार काजी को बुलवाकर बच्चे का नामकरण संस्कार सम्पन्न कराया

गया। बच्चे का नाम कबीर रखा गया जो अरबी में महान परमात्मा का बोधक एक शब्द है।

कबीर का जन्मस्थान कहाँ है, इस सम्बन्ध में विभिन्न मत प्रचलित है। श्री गुरू ग्रंथ साहब, राग रामकली पद 3 में कहा गया है –

पहिले दरसन मगहर पाइओ फुनि कासी बसे आई।
× × ×
जैसा मगहर तैसो कासी हम एकै करि जानी।[1]

इसके आधार पर कुछ लोग कबीर का जन्मस्थान मगहर ही मानते हैं, जो गोरखपुर से लगभग 13 मील दूर आजकल के बस्ती जिले में है और सर्वसम्मति से कबीर के लीला संवरण का स्थान भी माना जाता हैं। किंतु उसी ग्रंथ की राय गउड़ी के पद 15 में कहा गया है –

सगल जनम सिवपुरी गंवाइआ।
मरती बार मगहर उठि आइआ।[2]

जिससे स्पष्ट होता है कि केवल 'मरती बार' उनके मगहर में आने का संकेत मिलता है।

डॉ. सुभद्र झा ने निम्नलिखित तर्कों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि कबीर का जन्म मिथिला में हुआ था और वहीं उन्होंने अपने जीवन का आरम्भिक अंश भी व्यतीत किया था –

(1) मिथिला में मछली न खाने वालों को 'वैष्णव' कहा जाता है, चाहे वे शक्ति के उपासक ही क्यों न हो और इसके विपरीत 'शाक्त' का अर्थ वहाँ 'मत्स्यमांसभोजी' किया जाता है। मैथिलियों की इस चलन से कबीर पूर्णतया परिचित जान पड़ते हैं।

(2) 'बीजक' के एक पद में कहा गया है –
ज्यों मैथिल को सच्चा वास।
त्योंहि मरन होय मगहर पास।[3]

(3) 'सर्वज्ञसागर' नामक एक कबीरपंथी ग्रंथ में कबीर के पक्ष से यह उक्ति मिलती है –
सावन भादों बरसै मेहा।
एते सबद हम कह्यो बिदेहा।[4]

सुभद्र जी के अनुसार यहाँ 'बिदेह' का अर्थ है 'मिथिलावासी'। वह 'जीवनमुक्त' का बोधक नहीं हो सकता, क्योंकि कबीर अथवा कबीरपंथी जीवित अवस्था में मुक्ति नहीं मानते।[5] बनारस गजेटियर (1909 ई.) में आजमगढ़ जिले के बेलहरा गाँव को कबीर का जन्मस्थान बताया गया है। स्व. पं. चन्द्रबली पाण्डेय के अनुसार, आज भी पटवारियों के कागदों में बेलहरा उर्फ बेलहर पोखर लिखा मिलता है। इसी आधार पर उनकी धारणा है कि यही 'बेलहर पोखर' 'लहर तालाब' की जड़ है। 'बेलहर' का 'लहर' एवं 'पोखर' का 'तालाब' कर लेना जनता के बायें हाथ का खेल है। पाण्डेय जी ने बेलहर पोखर को लहर तालाब की जड़ माना है किंतु, प्रमाणों के अभाव में लहर तालाब की जड़े भी बहुत गहरी नहीं हैं और फिर काशी के पास ही जब लहरतारा मौजूद है, तब उसे इतनी दूर आजमगढ़ में ले जाने का कोई कारण नहीं जान पड़ता। वैसे पास के मिर्जापुर जिले में भी बेलहर नामक एक गांव है। फिर उसी को क्यों न कबीर की जन्मभूमि मान लिया जाये?

लहरतारा, जो काशी के कबीरचौरा से उत्तर–पश्चिम की ओर लगभग दो मील पर है, समस्त कबीर पंथियों द्वारा निरपवाद रूप से कबीर का जन्मस्थान माना जाता है। सम्प्रदायेत्तर व्यक्तियों में से भी अधिकांश का झुकाव अब इसे ही उनकी जन्मस्थली मानने के पक्ष में होता जा रहा है। किंतु लिखित रूप में इसकी परम्परा बीसवीं शती से पूर्व की नहीं मिलती। कबीर के जन्मस्थान के रूप में लहरतारा का उल्लेख सर्वप्रथम स्वामी परमानन्ददास के 'कबीर मंशूर' (सं. 1966 वि.), बाबू लैहनासिंहकृत 'कबीर कसौटी' (सं. 1971 वि.) तथा स्वामी युगलानन्दकृत 'कबीर चरित्र बोध' (सं. 2007 वि.) में मिलता है। रामानन्दी सम्प्रदाय के 'प्रसंग पारिजात' नामक एक ग्रंथ में भी लहरतारा को कबीर का जन्मस्थान बताया गया है और यद्यपि इस ग्रंथ का रचनाकाल सं. 1515 वि. दिया हुआ है, किंतु इसमें महात्मा गाँधी तक का उल्लेख मिल जाने से इसे अत्याधुनिक ग्रंथ मानना चाहिए

और इसके साक्ष्यों पर भी आँख मूँदकर विश्वास नहीं करना चाहिए।[6] इस प्रसंग में काशी का उल्लेख अवश्य कुछ प्राचीन रचनाओं में मिलता है, किंतु उनकी परम्परा भी अधिक से अधिक सं. 1800 वि. तक ही सिद्ध की जा सकती है, उसके पूर्व की नहीं। ''काशी में हम प्रगट भए हैं रामानन्द चिताएं'' इत्यादि पंक्तियाँ जिन पदों में मिलती हैं, उन्हें कबीर की प्रामाणिक रचना मानने में अनेक कठिनाइयाँ हैं।

विश्लेषण –

जनश्रुति के आधार पर स्वामी रामानंद को कबीर का गुरू माना जाता रहा है। यहाँ तक कि उनके जन्म के सम्बन्ध में भी यह कहानी प्रचलित है कि एक ब्राह्मण अपनी विधवा कन्या के साथ स्वामी रामानंद के दर्शन के लिए गया। कन्या के प्रणाम करने पर स्वामी जी ने उसे पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया। महात्मा का दिया हुआ आशीर्वाद मिथ्या नहीं हो सकता था, अतः कुछ दिन पश्चात् उसके गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसकी उसने लोक लाज के भय से तालाब के किनारे फेंक दिया। इस कहानी में कुछ और भी चमत्कार का अंश जोड़ा जाता है, जिससे यह सिद्ध किया जाता है कि कबीर उस ब्राह्मण कन्या के गर्भ से नहीं प्रत्युत उसके हाथ में निकले हुए एक फफोले से पैदा हुए थे। इसीलिए कुछ लोग उनका मूल नाम 'करवीर' (हाथ से उत्पन्न वीर) मानते हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि स्वामी रामानंद से कबीर का सम्बन्ध प्रमाणित करने के लिए अथवा उन्हें ब्राह्मण कुलोत्पन्न सिद्ध करने के लिए उपर्युक्त कहानियाँ गढ़ ली गयी हैं।

कबीर मुसलमान परिवार में पोषित होने के बावजूद एक वैष्णव भक्त के समान आचरण करते थे। इस पर ब्राह्मण लोग आपत्ति करते थे कि निगुरे वैष्णव को मुक्ति नहीं मिला करती। इन बातों से तंग आकर कबीर ने दीक्षा लेने की बात सोची। उस समय स्वामी रामानंद बड़े प्रभावशाली महात्मा थे, किंतु किसी वैष्णव आचार्य द्वारा मुसलमान को दीक्षा मिलने में कठिनाई थी। अतः कबीर ने एक नयी युक्ति सोच निकाली। रामानन्द प्रायः झुटपुटे में ही गंगा–स्नान को जाया करते थे। कबीर उनके रास्ते में लेट गये। अंधेरे में जब स्वामी जी की खड़ाऊँ उनसे टकरायी तो स्वामी जी के मुख से 'हाय राम!' निकला, जिसे कबीर ने गुरूमंत्र समझ लिया और अपने को रामानंद का शिष्य प्रचारित किया। रामानंद के शिष्यत्व की घटना का उल्लेख भक्त व्यास (मृ.सं. 1669 वि.), अनन्तदासकृत 'कबीर साहब की परचई' (सं. 1645) तथा नाभादास के 'भक्तमाल' (सं. 1690 के आसपास) में भी मिलता है। 'प्रसंग पारिजात' में भी कबीर को रामानंद का शिष्य बताया गया है, किंतु जैसा पहले संकेत किया गया, यह ग्रंथ अत्याधुनिक है और इसकी रचना सं. 1515 में सिद्ध नहीं की जा सकती। 'अगस्त्य संहिता' के अनुसार स्वामी रामानंद का जन्म सं. 1356 वि. में और देहावसान सं. 1437 वि. में हुआ था। इस प्रकार उनकी आयु 111 वर्ष होती है। दूसरी ओर सं. 1455 मे जन्म लेने वाले कबीर रामानंद की मृत्यु के समय 12 वर्ष के रहे होंगे। यह दोनों बातें विश्वसनीय कम जान पड़ती हैं, क्योंकि इतनी छोटी आयु में दीक्षा लेने की संभावना दृढ़ नहीं प्रतीत होती। इस कठिनाई को दूर करने के लिए कुछ विद्वान कबीर की जन्मतिथि कुछ और पीछे ले जाना चाहते हैं, किंतु इसके लिए कोई आधार नहीं मिलता।[7]

'निर्भयज्ञान' तथा 'ज्ञानसागर' नामक कबीरपंथी ग्रंथों में चंदवार को कबीर का जन्मस्थान बतलाया गया है। उपर्युक्त दोनों ग्रंथों में कबीर तथा धर्मदास के काल्पनिक संवाद के रूप में उनकी जीवनी से सम्बद्ध अनेक विवरण मिलते हैं। इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए कबीर ऐसे करते हैं –

हम प्रगटे चंदवारे जाई। पूरब प्रमल शब्द गुहराई।।
बरसायत दिन हम प्रगटाना। ताल मांहि पुरइन भल जाना।
नीरू जुलहा नीमा नारी। जोलहिन तृषा लागि तेहि बारी।।
नीमा जल पीवन तट आई। सुन्दर शिशु देखत चित भाई।।
जल मँह धँसि मोहिं लीन्ह उठाइ। हर्षे रंक परा धन पाई।।[8]

'ज्ञानसागर' में भी किंचित शब्दांतर के साथ यही कहानी इस प्रकार मिलती है –

आसन कर आयो चंदवारा। चंदन साहु तहाँ पग धारा।।
बाल रूप धर आयो तँहवाँ। आठैं पहर रह्यों मैं जहँवाँ।।

ताकी नारि गई अस्नाना। रूप देखि ताकर मन माना।।
लै गई बालक सो निज गेहा। बहुत भाँति तेहि कीन्ह सनेहा।।
चंदन साहु देखि रिसियाना। चलि गयो नारि तोर अब ज्ञाना।।
बेग डारि बालक को आजू। सुनै लोग तो होई अकाजू।।
चेरि हाथ तब दीन्ह पठाई। उद्यान माँह तिन्ह दीन्ह अडाई।।
कुछ दिन काया धरि दुख पावा। यहि अंतरि एक जुलहा आवा।।
नूरि नाम जो वा संग नारी। देखत बालक भई सुखारी।।[9]

दोनों ग्रंथों में निस्संदिग्ध रूप में चंदवार ही वह स्थान बताया गया है, जहाँ नीरू–नीमा को कबीर शिशु रूप मे मिले थे। कबीरपंथ के एक अन्य मान्य ग्रंथ 'अनुरागसागर' के कुछ संस्करणों में भी इस प्रसंग में चंदवार का ही उल्लेख है। लहरतारा की चर्चा वहां भी नहीं है। 'निर्भयज्ञान' तथा 'ज्ञानसागर' अपेक्षाकृत प्राचीनतर हैं, अतः उनके साक्ष्य गंभीरतापूर्वक विचारणीय हैं। इसी प्रसंग में कबीरपंथियों में प्रचलित निम्नलिखित पंक्तियाँ भी विचारणीय हैं –

चौदह सौ पचपन साल गये, चन्द्रवार इक ठाठ ठये।
जेठ सुदी चरसायत को, पूरनमासी प्रगट भये।।[10]

इसमें उल्लिखित 'चन्द्रवार' शब्द के सम्बन्ध में काफी समय से विवाद चला आ रहा है। गणना करने पर सं. 1455 या 56 की किसी भी ज्येष्ठ पूर्णिमा को सोमवार नहीं पड़ता, अतः ज्ञात होता है कि उपर्युक्त छंद का 'चन्द्रवार' दिन का सूचक नहीं, बल्कि उसी स्थान का सूचक है जिसका उल्लेख 'निर्भयज्ञान', 'ज्ञानसागर' तथा 'अनुरागसागर' में मिलता है। इतने अधिक साक्ष्यों से कबीर के जन्मस्थान के रूप में इसकी संभावना बहुत बढ़ जाती है, किन्तु अभी निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि यह स्थान कहाँ स्थित है। आगरा के पास यमुना तट पर तथा बलिया जिले में चंदवार नाम के दो स्थान मिलते हैं, किंतु उनमें से किसी की भी संभावना इस प्रसंग में दृढ़ नहीं ज्ञात होती। लहरतारा से लगभग तीन मील दूर चाँदपुर नामक एक गाँव है, जिसके आसपास कई छोटे–छोटे तालाब हैं। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से भी 'चांदपुर' से 'चंदवार' का परिवर्तन असंभव नहीं है। अतः कबीर के जन्मस्थान के रूप में इस स्थान की संभावना कुछ अधिक दृढ़ जान पड़ती है ,किंतु अभी इस दिशा में पर्याप्त खोजबीन की आवश्यकता है।[11]

डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने ना.प्र.सभा की 'कबीर ग्रंथावली' की साखी 12/47 के चतुर्थ चरण 'कुरहै ऊँणी कूष' के आधार पर अनुमान लगाया कि 'कुरह' कुदेश है, और वाराणसी को कोई 'कुदेश' नहीं कह सकता है। लगता है कि किसी ऐसे क्षेत्र में जन्म हुआ है, जहाँ आचार–विचार की शिथिलता थी। असंभव नहीं यह–'कुरह' टक्क प्रदेश (पूर्वी पंजाब) रहा हो, जहाँ पर उस समय मुसलमानों का बाहुल्य था, जो कबीर की भाषा से समर्थित लगता है। किंतु 'कुरह' अथवा 'कुलक्ष' को टक्क देश मानना युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता। डॉ. गुप्त के इस अनुमान का आधार वस्तुतः 'पाइअसद्दमहण्णवों' ज्ञात होता है, जिसमें 'कुलक्ष' को एक म्लेच्छ देश बतलाया गया है, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह म्लेच्छ देश टक्क ही हो। 'कुरहना' वस्तुतः कराहना है। तुलनीय शम्सुद्दीन विष्णोई–'घायलां ज्यूं कुरहै' अर्थात् घायलों की तरह कराहता है। अतः 'कुरहै ऊंणी कूष' का सही अर्थ होगा–पापी पेट के लिए कराहता है। इस प्रकार गुप्त जी का तर्क मान्ध नहीं प्रतीत होता।[12]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने अपनी पुस्तक 'कबीर' में आचार्य क्षितिमोहन सेन के मत का प्रतिपादन करते हुए त्रिपुरा की जुंगी जाति के समान कबीर को योगियों के किसी ऐसे वर्ग से सम्बद्ध माना है, जिन्होंने थोड़े समय पूर्व इस्लाम धर्म ग्रहण किया था और जिनके परिवारों में हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों प्रकार के रीति–रस्म मनाये जाते थे। कबीर के देहावसान के सम्बन्ध में जो कहानी प्रचलित है, उसके अनुसार 'शव' अदृश्य हो गया था और पुष्प मात्र बचे थे। उन्हीं को बाँटकर हिन्दुओं ने जलाया और मुसलमानों ने दफनाया। त्रिपुरा के योगियों में भी पहले शव को जलाकर फिर उसे गाड़ने की प्रथा है।[13]

डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल भी इसी प्रकार का मत व्यक्त कर चुके थे। उन्होंने कबीरदास को जन्म से मुसलमान माना है और इस सम्बन्ध में रैदास तथा पीपा के साक्ष्य के अतिरिक्त दादू के शिष्य रज्जब का साक्ष्य

भी उदधृत किया है, जिनका कथन है 'जुलाहा ग्रभे उत्पन्नौ कबीर देवो महामुनिः।' अपनी जाति का निर्देश कबीर द्वारा 'कोरी' शब्द से करते हुए देखकर उन्होंने यह अनुमान लगाया कि कोरी ही मुसलमान धर्म में दीक्षित हो जाने पर जुलाहे हो गये। ऐसे कोरियों को जुलाहा हुए अभी इतने अधिक दिन नहीं हुए थे कि कोरी कहलाना वे अपना निरादर समझें। डॉ. बड़थ्वाल के अनुसार, ''मेरी समझ से कबीर भी किसी प्राचीनतया कोरी, किंतु तत्कालीन जुलाहा कुल के थे, जो मुसलमान होने के पहले जोगियों का अनुयायी था।''[14]

डॉ. विद्यावती के अनुसार 'कोरी' अथवा 'कोली' वस्तुतः 'कोलिय' के ही विकृत रूप हैं। प्राचीन युग में यह एक प्रसिद्ध जाति रही है। स्वतः सिद्धार्थ गौतम की माँ महामाया कोलिय राजवंश की थी। कोलियों को अपना एक जनपद था, जिसकी राजधानी देवदह थी। पालि ग्रंथों में इस जाति का विस्तृत परिचय दिया हुआ है। कालान्तर में यह कोलिय जाति सम्पूर्ण देश मे फैल गयी थी और आज भी सम्पूर्ण भारत में इस जाति के लोग हैं, जो अछूत न होते हुए भी अछूत माने जाते हैं। मध्य युग में यवन आक्रमणो से बौद्धों को बड़ा कष्ट भोगना पड़ा था। वे या तो इस देश से भाग गये या यहीं हिन्दू धर्म में घुल–मिल गये अथवा मुसलमान हो गये। डॉ. विद्यावती का विचार है कि कबीर के पूर्वज यही कोलिय राजपूत थे जो मुसलमान हो गये थे। यही कारण है कि कबीर की वाणियों में बौद्ध, हिन्दू और इस्लाम धर्मों की विचारधारा के प्रमाण दिखाई पड़ते हैं। कबीर के परिवार वाले नये मुसलमान बने थे, किंतु संस्कार उनके बौद्ध धर्म के ही थे, अतः वे हिन्दुओं तथा मुसलमानों की अनेक धार्मिक भावनाओं पर आघात करते थे।[15]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि कबीर की जाति कोरी थी, जो प्राचीन कोलिय से सम्बद्ध थी और जिसे जुलाहा नाम से भी पुकारा जाता था। इसलिए कबीर ने अपने को जुलाहा और कोरी कहा है तथा इनमें भेद नहीं माना है।

निष्कर्ष –

निष्कर्षतः सन्त कबीर समाज सुधारक थे। उन्होंने समाज में व्याप्त रूढ़ियों तथा अन्धविश्वासों पर करारा व्यंग्य किया है। उन्होंने धर्म का सम्बन्ध सत्य से जोड़कर समाज में व्याप्त रूढ़िवादी परम्परा का खण्डन किया है। कबीर ने मानव जाति को सर्वश्रेष्ठ बताया है तथा कहा है कि इसमें से कोई भी ऊँचा या नीचा नहीं है। एक महान क्रान्तिकारी होने के कारण उन्होंने समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों व बुराईयों को दूर करने का प्रयास किया है। कबीर ने मानव जाति को एक अच्छा सन्देश दिया है। हमें उनके सन्देश को अपने जीवन में उतारना चाहिए।

संदर्भ –

1. डॉ. पारसनाथ तिवारी – कबीर वाणी सुधा, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2021, पृष्ठ 5
2. डॉ. पारसनाथ तिवारी–कबीर वाणी सुधा, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2021, पृष्ठ 5
3. डॉ. पारसनाथ तिवारी–कबीर वाणी सुधा, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2021, पृष्ठ 5
4. डॉ. पारसनाथ तिवारी–कबीर वाणी सुधा, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2021, पृष्ठ 5
5. डॉ. पारसनाथ तिवारी – कबीर वाणी सुधा, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2021, पृष्ठ 6
6. डॉ. पारसनाथ तिवारी – कबीर वाणी सुधा, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2021, पृष्ठ 9
7. डॉ. पारसनाथ तिवारी – कबीर वाणी सुधा, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2021, पृष्ठ 13, 14
8. वही, पृष्ठ 10
9. डॉ. पारसनाथ तिवारी – कबीर वाणी सुधा, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2021, पृष्ठ 10
10. डॉ. पारसनाथ तिवारी – कबीर वाणी सुधा, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2021, पृष्ठ 10
11. डॉ. पारसनाथ तिवारी – कबीर वाणी सुधा, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2021, पृष्ठ 11
12. डॉ. पारसनाथ तिवारी – कबीर वाणी सुधा, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2021, पृष्ठ 12
13. डॉ. पारसनाथ तिवारी – कबीर वाणी सुधा, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2021, पृष्ठ 26
14. डॉ. पारसनाथ तिवारी – कबीर वाणी सुधा, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2021, पृष्ठ 27
15. डॉ. पारसनाथ तिवारी – कबीर वाणी सुधा, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2021, पृष्ठ 28